इकाई 7 भारतीय समाज और शिक्षा

सरचना

7.1 प्रस्तावना

7.2 उद्देश्य

7.3 शिक्षा : भारतीय समाज की एक उपव्यवस्था

7.4 उपव्यवस्था के रूप में शिक्षा की विशेषताएँ

7.5 भारत की सामाजिक संरचना के साथ शिक्षा का संबंध

- 7.5.1 शिक्षा और अर्थव्यवस्था में अंतःसंबंध
- 7.5.2 शिक्षा और राज्य–व्यवस्था में अंतःसंबंध
- 7.5.3 शिक्षा और जाति में अंतःसंबंध
- 7.5.4 सामाजिक पिछड़ेपन का उत्थान तथा शिक्षा का अंतःसंबंध
- 7.5.5 शिक्षा और संस्कृति में अंतःसंबंध

7.6 शिक्षा : सामाजिक परिवर्तन का एक साधन

7.7 शिक्षा के लिए सामाजिक माँग

7.8 विद्यालयः एक सामाजिक इकाई के रूप में

- 7.8.1 विद्यालय-जीवन में लोकतंत्र
- 7.8.2 विद्यालय का सामाजिक वातावरण
- 7.8.3 अध्यापक की भूमिका

7.9 सारांश

7.10 अभ्यास कार्य

7.11 बोध प्रश्नों के उत्तर

7.12 कुछ उपयोगी पुस्तकें

7.1 प्रस्तावना

इस इकाई में आप यह अध्ययन करेंगे कि शिक्षा समाज की एक उपव्यवस्था है और सामाजिक संगठन में इसका महत्व है। समाज की अन्य उपव्यवस्थाओं के साथ, जैसे अर्थव्यवस्था, राज्य व्यवस्था, जातिप्रथा और संस्कृति के साथ शिक्षा के अंतःसंबंधों को भी स्पष्ट किया गया है। यह इकाई सामाजिक परिवर्तन लाने में शिक्षा की भूमिका से अध्यापक को परिचित कराएगी। सामाजिक इकाई के रूप में विद्यालय का वर्णन किया गया है। अतः यह इकाई अध्यापकों के लिए, अपने विद्यार्थियों की आवश्यकताओं और सामाजिक मानदंडों के अनुसार उनका मार्गदर्शन करने और अपनी सामाजिक भूमिका को निपुणता और कर्मठता के साथ निभाने का आधार प्रदान करेगी।

7.2 उद्देश्य

इस इकाई का अध्ययन करके आप इस योग्य हो जाएंगे कि :

- शिक्षा को भारतीय समाज की उपव्यवस्था के रूप में पहचान सकेंगे;

- शिक्षा और अन्य सामाजिक उपव्यवस्थाओं, जैसे अर्थव्यवस्था, राज्य-व्यवस्था, जाति, धर्म और संस्कृति के संबंधों का विवेचन कर सकेंगे;
- शिक्षा के उन बिंदुओं का वर्णन कर सकेंगे जो उसे सामाजिक परिवर्तन का साधन बनाते हैं;
- शिक्षा के लिए सामाजिक मांग का विवेचन कर सकेंगे;
- सामाजिक इकाई के रूप में विद्यालय की भूमिका का वर्णन कर सकेंगे।

7.3 शिक्षा: भारतीय समाज की एक उपव्यवस्था के रूप में

शिक्षा एक ऐसी प्रक्रिया है जो समाज में प्रत्येक व्यक्ति को उद्देश्यपूर्ण जीवन-यापन की संप्राप्ति में सहायता करती है। सामाजिक परिवर्तन की प्रक्रिया द्वारा शैक्षिक ढाँचा जटिल बन गया है। इस संदर्भ में शिक्षा एक ऐसी प्रक्रिया है जो समाज के सदस्यों को समाज के निरंतर बदलते हुए पहलुओं को अपनाने में सहायता करती हैं। हाल ही में शिक्षा संबंधी जो चिंतन हुआ है उसमें एक ऐसी समाजशास्त्रीय विभाजक रेखा का आर्विभाव हुआ है जिसने समाज को रूपांतरित करने में हमारी शिक्षा की परंपरागत भूमिका के संदर्भ में व्याख्या के नए आधार वाक्य प्रदान किए हैं। इन आधार-वाक्यों की चर्चा नीचे की जा रही है :

1. समाजशास्त्र का एक आधार वाक्य यह है कि व्यक्ति उन परिस्थितियों में उत्पन्न होता है जो अनेक ऐतिहासिक या समकालीन कारणों से उद्‌भूत शक्तियों का परिणाम है।
2. दूसरा आधार वाक्य यह है कि व्यक्ति अपनी समाजीकरण की प्रक्रिया में सामाजिक संरचना और उद्देश्यों के साथ अपनी पहचान बनाता है।

शिक्षा को एक ऐसी स्वतःपूर्ण सामाजिक व्यवस्था माना जा सकता है जो अपने–आप में एक अनोखा संगठन है जिसके अनन्य प्रतिमान हैं। आइए, सर्वप्रथम यह चर्चा करें कि सामाजिक व्यवस्था से हमारा क्या तात्पर्य है।

समाजशास्त्रियों के अनुसार सामाजिक व्यवस्था की अवधारणा सामाजिक संरचना और सामाजिक संगठन के लिए उपयोगी है। सामाजिक व्यवस्था सामाजिक अन्योन्य-क्रिया का एक तंत्र है तथा व्यक्तियों की संगठित क्रियाओं से समाज के एक अथवा अनेक आवश्यक कार्य किए जाते हैं।

पारसन्स और शिल्स (1951) के अनुसारः "सामाजिक व्यवस्था की प्रमुख इकाई भूमिकाएँ तथा इस प्रकार की भूमिकाओं के समूह हैं।"

इस संदर्भ में शिक्षा एक आवश्यक सामाजिक व्यवस्था है। इसकी स्पष्ट और सुपरिभाषित संरचना है यह व्यवस्था कई भूमिकाओं का समुच्चय है तथा इसका प्रभाव अन्य सामाजिक व्यवस्थाओं पर भी पड़ता है। क्लार्क के अनुसार "शिक्षा व्यवस्था का उस समाज पर निश्चित प्रभाव पड़ता है जो उसको ग्रहण करता हैं।" किसी भी समाज की अर्थव्यवस्था, राजनैतिक संगठन, सामाजिक स्तरीकरण, संस्कृति, बंधुता और सामाजिक एकीकरण शिक्षा के साथ घनिष्ठ रूप से जुड़े हैं।

अतः यह कह सकते हैं कि शिक्षा ज्ञान के साथ-साथ व्यक्तियों के समाजीकरण के अंतरण और प्रोन्नति का एक साधन है। अतः यह एक सामाजिक उपव्यवस्था है और ... सामाजिक उपव्यवस्थाओं में परिवर्तन लाने के लिए उत्तरदायी है।

7.4 उपव्यवस्था के रूप में शिक्षा की विशेषताएँ

सामाजिक उपव्यवस्था के रूप में शिक्षा की विशेषताएँ निम्नलिखित हैं :-

1. सामाजिक व्यक्तिवाद की स्थापना करने में शिक्षा एक शक्तिशाली और प्रबल साधन है। शिक्षा सामाजिक मानदंडों के साथ ही मूल्यों के प्रति आदर, विकसित करती है तथा व्यक्ति में ज्ञान और समझ का विकास करती है। शिक्षा उसे समाज का उत्तरदायी और प्रभावी व्यक्ति बनाती है।

2. यह वांछित दिशा में समाज को मोड़ देने में सहायता करती है।

3. यह उस अन्योन्यक्रिया व्यवस्था का अध्ययन करती है जिसका उद्‌भव मानव समूहों की सरंचना और कार्यप्रणाली से हुआ है और बच्चों को इन अन्योन्यक्रियाओं के मानकों को समझने में सहायता करती है।

4. शिक्षा-व्यवस्था का उद्‌भव समाज की विभिन्न संस्थाओं की कार्यप्रणाली और गतिकि का परिणाम है।

5. शिक्षण संस्थाएँ जैसे विद्यालय और कॉलेज, मनुष्यों की आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए अवसर प्रदान करती हैं। और उनकी संस्कृति की वांछनीय विशेषताओं को मूल्यों और मानदंडों आदि के रूप में दूसरों को हस्तांतरित करती हैं।

6. शिक्षण-व्यवस्था अपने अनुभवों के द्वारा शिक्षा को समृद्ध बनाती है और शिक्षण समस्याओं के समाधान के लिए नया प्रकाश देती है।

बोध प्रश्न

टिप्पणी : क) अपने उत्तरों के लिए नीचे दिए गए स्थान का प्रयोग कीजिए।

ख) इस इकाई के अंत में दिए गए उत्तरों से अपने उत्तर मिलाइए।

1. सामाजिक व्यवस्था से आप क्या समझते हैं?

.....

.....

.....

.....

2. सामाजिक व्यक्तिवाद की स्थापना में शिक्षा एक शक्तिशाली साधन क्यों मानी जाती है?

.....

.....

.....

7.5 भारत की सामाजिक सरंचना के साथ शिक्षा का संबंध

7.5.1 शिक्षा और अर्थव्यवस्था में अंतःसंबंध

औद्योगिकीकरण के विकास ने शैक्षिक संस्थाओं की प्रकृति को महत्वपूर्ण ढंग से प्रभावित किया है। इस विकास-प्रक्रिया में अर्थव्यवस्था कृषि से वस्तु-निर्माण और फिर रोज़गार-उद्योग में बदल गई। वास्तव में इस प्रकार की परिस्थितियों से समाज की मांग शारीरिक से बौद्धिक और निम्न

से उच्च स्तर के कौशल में परिवर्तित हो गई। वास्तव में औद्योगिकीकरण की प्रगति के साथ-साथ शिक्षा रोजगारोन्मुख हो गई और व्यावसायिक कौशल में व्यक्तियों को निरंतर प्रशिक्षित करते रहने की मांग बढ़ने लगी। भारतीय परिस्थितियों में शिक्षा हमारी अर्थव्यवस्था की प्रथम आवश्यकता बन गई। औद्योगिकीकरण ने, विशेष तौर पर परिष्कृत इलेक्ट्रानिक्स के स्तर पर अधिक उत्पादन के लिए शोध पर बल दिया। उच्च शिक्षा और शोध ने तकनीकी उन्नति में तेजी के लिए वैज्ञानिक और इंजीनियर प्रदान किए। इन परिस्थितियों में कुछ समाजशा संबंधी समस्याएँ उत्पन्न हो सकती हैं और एकतरफा विकास भी हो सकता है, अर्थात शिक्षा संस्थाएँ बहुत अधिक तकनीशियन और कारीगर (दक्ष) तैयार कर बेरोज़गारी को बढ़ा सकती हैं। ये कुछ आधारभूत अवधारणाएँ हैं जो प्रौद्योगिकीय समाज में अर्थव्यवस्था और शिक्षा के मध्य आपसी संबंधों की स्थापना करती हैं।

भारत एक विकासशील देश होने के नाते विज्ञान और प्रौद्योगिकी पर बहुत अधिक बल दे रहा है। स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात विज्ञान और प्रौद्योगिकी ने भारतीय अर्थव्यवस्था को आश्चर्यजनक बढावा दिया। यह कहने की आवश्यकता नही की भारत में शिक्षा ने विज्ञान और प्रौद्योगिकी के विकास के लिए अनुकूल दिशा प्रदान की। जब देश ने विज्ञान और प्रौद्योगिकी शिक्षा तथा उच्च शिक्षा पर बल दिया तो शिक्षा के नाम पर किया जाने वाला व्यय भवन, छात्रावास, पुस्तकालय भवन, प्रशासन और अन्य सुविधाओ पर तथा अध्यापकों के वेतन, छात्रवृतियों, पुस्तकें, प्रयोगशालाओं की सुविधाओं आदि पर खर्च किया जाने लगा। इसे इस आधार पर उपयुक्त माना जा सकता है कि जब शिक्षा विज्ञान और प्रौद्योगिकी पर खर्च करती है तब शिक्षा से अर्थव्यवस्था को ही सर्वाधिक लाभ पहुँचता है। औद्योगिक समाज में ऐसी शिक्षा की आवश्यकता है जो शोध द्वारा नई प्रौद्योगिकी तथा व्यावसायिक और वैज्ञानिक मानव शक्ति को प्रशिक्षण द्वारा तैयार करे। इस प्रकार औद्योगीकरण तथा आगामी आर्थिक सरोकार वे शक्तियाँ हैं जो शैक्षिक समाजों में शैक्षिक व्यवस्था के विस्तार को आगे बढ़ाती है।

लोगों का आर्थिक स्तर भी एक अन्य कारक है जो शिक्षा के प्रसार पर प्रभाव डालता है। बी. वी. शाह ने "सामाजिक परिवर्तन और गुजरात के कॉलेजों के विद्यार्थी" शीर्षक से किए गए अपने अध्ययन में यह अनुभव किया कि कॉलेजों के लगभग 52 प्रतिशत विद्यार्थी उन परिवारों से आते हैं जो सफेदपोश कार्यो से जुड़े हैं। विक्टर डीसूजा अपने अध्ययन "भारत में शिक्षा, सामाजिक सरचना और लोकतंत्र" में इस निष्कर्ष पर पहुँचे हैं कि बच्चों की शिक्षा की गुणवत्ता के लिए अभिभावको का सामाजिक और आर्थिक स्तर जिम्मेदार है।

शैक्षिकता के निर्धारक के रूप में आर्थिक ढ़ाँचा स्पष्ट संकेत करता है कि वर्तमान सामाजिक संरचना में सभी को अवसरों की समानता उपलब्ध होने के बावजूद यह सत्य है कि उच्च व्यवसाय या आय समूह से संबंध रखने वाले व्यक्ति ही उच्च गुणवत्ता की शिक्षा प्राप्त कर पाते हैं। यह तथ्य हमें यह कहने के लिए प्रेरित करता है कि अच्छी संस्थाओं से आने वाले विद्यार्थी समाज में उच्च व्यावसायिक दायित्व ग्रहण करते हैं। अतः भावी भारतीय समाज में आर्थिक रूप से सम्पन्न वर्ग विभिन्न स्तरों पर देश की निर्णय लेने वाली प्रक्रिया को लगातार प्रभावित करते रहेंगे।

7.5.2 शिक्षा और राज्य-व्यवस्था में अंतःसंबंध

शिक्षा और राजनीति

भारत में शिक्षा के भविष्य को निर्धारित करने वाली शक्तियों का स्वरूप राजनीतिक है। टी. बी. बोटोमोर के अनुसार "वर्तमान भारत में दो विशिष्ट वर्ग हैं – उच्च अधिकारी और राष्ट्रीय राजनेता ये दोनों सर्वाधिक प्रभावी वर्ग हैं और भारत को आधुनिक औद्योगिक राष्ट्र बनाने में इनकी सबसे बड़ी जिम्मेदारी है"। जिन लोगों के हाथ में राजनीतिक सत्ता है, वे शिक्षा-नीति से राजनीतिक लाभ पाने का प्रयास करते हैं। अब अल्पसंख्यक वर्गों के लिए नितनवीन शैक्षिक सुविधाएँ उपलब्ध हैं, जिसके परिणामस्वरूप एक नए सत्ताधारी वर्ग का उदय हो रहा है। इस सत्ताधारी वर्ग में अल्पसंख्यक वर्ग के सदस्य तथा अनुसूचित जाति और जनजाति के सदस्यों के चेहरे उभर कर सामने आए हैं। इन समूहों को भी शिक्षा की उपयुक्त सुविधाओं के साथ-साथ

सुरक्षा और संरक्षा प्रदान की गई है। सत्ता की भागीदारी वाले नेता वर्ग में मजदूरों के नेता भी शामिल हैं। फैक्ट्री और कारखानों की संख्या बढ़ने के साथ श्रम शक्ति बढ़ी है और श्रमिक नेताओं का स्तर ऊँचा हुआ है। ये अपने क्षेत्र के विशेषज्ञ हैं और इससे सत्ता सरंचना में इनकी स्थिति सुरक्षित हुई है।

अतः जिन व्यक्तियों ने विद्यालयों और कालेज से शिक्षा ग्रहण की है और आम लोगों की प्रतिभाशाली संतानें हैं वे अब शिक्षा-नीति को प्रभावित करने की स्थिति में नहीं हैं। परंतु जब देश आधुनिकीकरण की प्रक्रिया से गुजर रहा है तब तकनीकी दृष्टि से निपुण और विशेषज्ञ व्यक्तियों की निर्णय लेने और उनके क्रियान्वयन करने के स्तर पर अधिक से अधिक सेवाओं की जरूरत होगी। इस प्रकार राजनीति में भी उनकी भूमिका अति आवश्यक हो जाएगी।

7.5.3 शिक्षा और जाति में अंतःसंबंध

भारतीय सामाजिक स्तरीकरण का एक मुख्य कारक वर्ण-व्यवस्था या जाति-व्यवस्था है। जाति को इस प्रकार परिभाषित किया जा सकता है "वह सामाजिक वर्ग जिसकी सदस्यता जन्म से निर्धारित है और जिसमें वस्तुतः उर्ध्वगामी गतिशीलता नहीं है।" वे जातियाँ जो ऐतिहासिक रूप से शोषित और सामाजिक रूप से निम्नस्तर की मानी जाती रही हैं, भारत में अब उन्हें कुछ संवैधानिक सुरक्षा और संरक्षण हुआ प्राप्त है। इन संवैधानिक उपायों द्वारा पिछड़ी जातियों को अवसर की समानता प्रदान की गई है। भारत सरकार द्वारा शिक्षा में उन्हें विशेष सुविधाएँ प्रदान की गई हैं। फिर भी भारत की शिक्षा में जाति-व्यवस्था आज भी मुख्य सामाजिक निर्धारक बनी हुई है।

बी. बी. शाह ने अपने पूर्वोक्त अध्ययन में इस तथ्य का उल्लेख किया है। गुजरात में निम्न जातियों से बहुत ही कम विद्यार्थी आते हैं "केवल तीन उच्चवर्णों के 88 प्रतिशत विद्यार्थी उच्चतम शिक्षा में हैं।" यह माना जाता है कि पिछली शताब्दियों में निम्न जातियाँ अपने बच्चों को शिक्षा के लिए माध्यमिक विद्यालयों में भेजने की इच्छुक नहीं थीं। आज वे प्रारम्भिक शिक्षा के लिए आगे आ रही हैं। परंतु यह सत्य है कि निम्न जातियों के बहुत ही कम विद्यार्थी उच्चतर शैक्षिक संस्थानों में आते हैं।

विक्टर डीसूजा ने अपने उपरोक्त अध्ययन में, जो डान्डेली (मध्यप्रदेश) पर किया गया था, कहा है कि कुछ हिन्दू जातियाँ जैसे शिल्पकार और ऐसी ही कुछ अन्य जातियाँ, शिक्षा में क्षत्रिय और व्यापारी वर्ग से अच्छी स्थिति में हैं। ऐसा डान्डेली के लोगों को औद्योगिक कार्य में भागीदार बनाने से हुआ। वहाँ शिल्पकार जातियों को व्यावसायिक कौशल प्राप्त करनें के लिए सुविधाएँ दी गई। जिससे उनका शैक्षिक स्तर सुधर गया। डीसूजा अपने अध्ययन के निष्कर्ष में कहते हैं कि "अभिभावकों की जाति और व्यावसायिक स्तर बच्चों की शिक्षा का मात्रा और गुणवत्ता को प्रभावित करते हैं।"

7.5.4 सामाजिक पिछड़ेपन का उत्थान तथा शिक्षा का अंतःसंबंध

प्रत्येक समाज में अज्ञान, सामाजिक बुराइयाँ और सामाजिक पिछड़ापन, जाति, रंग और लिंग इत्यादि के आधार पर भेदभाव की प्रवृत्ति को जन्म देती है। इससे किसी भी समाज की प्रगति और विकास में बाधा आती है। विभेदन शैक्षिक अवसरों की अनुपलब्धता की ओर ले जाता है जो कि दुर्भाग्यपूर्ण है। शिक्षा सामाजिक और आर्थिक विकास के साथ-साथ सामाजिक पिछड़ेपन की दासता से मुक्ति का प्रमुख साधन है। उदाहरण के लिए, सभी पुरूष-प्रधान समाजों में महिलाओं को शिक्षा प्राप्त करने तथा अपने विचार और आदर्शों को प्रकट करने के लिए परंपरागत रूप से हतोत्साहित किया जाता रहा। शहरी केन्द्रों में शिक्षा के प्रसार से समय बदल रहा है। परंतु ग्रामीण क्षेत्रों में शिक्षा की कम पहुँच के कारण भेदभाव आज भी कायम है।

अतः सामाजिक पिछड़ापन एक विष है, जिसका प्रतिकार केवल शिक्षा के प्रसार से ही किया जा सकता है।

7.5.5 शिक्षा और संस्कृति में अंतःसंबंध

औद्योगिक समाज में शिक्षा को दुहरे संकट का सामना करना पड़ रहा है जिसका संबंध शिक्षा की सुलभता और शिक्षा की पर्याप्तता से है। सुलभता (अभिगम्यता) का अर्थ है – शैक्षिक अवसरों की प्राप्ति और पर्याप्तता का संबंध समाज में एक व्यक्ति द्वारा शिक्षा के लिए व्यतीत किए गए वर्षों से है। शिक्षा की सुलभता और पर्याप्तता का किसी भी समाज के विकास में योगदान होता है और वह सामाजिक ढाँचे को बनाए रखता है। अतः शिक्षा का घनिष्ठ संबंध सामाजिक व्यवस्था के संदर्भ में यह है कि शिक्षा संस्कृति की निरंतरता को बनाए रखती है, साथ ही सांस्कृतिक परिवर्तन का कार्य भी करती है। सांस्कृतिक परिवर्तन आधारभूत सरंचना में, कार्यकलापों में या सामाजिक व्यवस्था के पारस्परिक संबंधों में ऐसा परिवर्तन है जो सांस्कृतिक निरंतरता को बनाए रखता है। यह सांस्कृतिक सातत्य समाज का केन्द्रिक मूल्य है। किसी भी सामाजिक व्यवस्था में सांस्कृतिक परिवर्तन का प्रथम लक्ष्य प्रगति करना है। विद्यालय और महाविद्यालय वे आधार हैं जिनपर प्रगति की अवधारणा फलती-फूलती है। सामाजिक परिवर्तन के लिए वांछित मूल्यों, मानदण्डों और उद्देश्यों को शैक्षणिक संस्थाएँ वास्तव में संचालित करती हैं। समाज के मूल्यों, आदर्शों और नैतिकता को सुरक्षित रखने में विद्यालय और महाविद्यालय की भूमिका प्रमुख होती है। ये वे युद्धभूमियाँ है जहाँ परम्परावाद और आधुनिकता आमने-सामने हैं।

भारतीय संस्कृति में तीन प्रमुख उपसंरचनाएँ हैं - (1) विशिष्ट वर्ग (2) जनसाधारण और (3) जनजातियॉ। विशिष्ट वर्ग ने शिक्षा की पर्याप्तता और सुलभता के कारण आश्चर्यजनक प्रगति की है। भारतीय समाज में जनसाधारण और जनजातीय स्तर भी अब शिक्षा प्राप्त करके सामाजिक गतिशीलता का अनुभव प्राप्त कर रहा है। पहली बार उपसंस्कृतियों के बीच एक नए तरीके की अन्योन्यक्रिया का उद्‌भव हुआ है। विशिष्ट वर्ग जनसाधारण और जनजातीय संस्कृति की समृद्धि की सराहना करना सीख रहा है और उसे अधिक सुलभ बनाने के लिए प्रोत्साहन दे रहा है। अतः शिक्षा विशिष्ट वर्ग और जनसाधारण के बीच की खाई को कम करने वाला एक सशक्त कारक है।

बोध प्रश्न

टिप्पणी : क) अपने उत्तरों के लिए नीचे दिए गए स्थान का प्रयोग कीजिए।

ख) इस इकाई के अंत में दिए गए उत्तरों से अपने उत्तर मिलाइए।

3. शिक्षा की आवश्यकता क्यों है?

.....

.....

.....

.....

4. 'जाति' की परिभाषा दीजिए।

.....

.....

.....

.....

.....

5. सामाजिक पिछड़ापन शिक्षा को कैसे प्रभावित करता है?

.....

.....

.....

6. शिक्षा का संस्कृति के साथ क्या संबंध है?

.....

.....

.....

.....

7.6 शिक्षा : सामाजिक परिवर्तन का एक साधन

जो समाज स्वयं को बदलना या आधुनिक बनाना चाहता है वह अपने वांछित उद्देश्यों को प्राप्त करने के लिए अनेक साधनों, उपकरणों, संस्थाओं, अभिकर्ताओं और अभिकरणों का प्रयोग करता है। इन साधनों में संभवतः शिक्षा ही सबसे प्रमुख साधन है। शिक्षा कौशलों और व्यवसायों का आवश्यक प्रशिक्षण प्रदान करती है और इस प्रकार आधुनिक उद्योगों, व्यापार, शिक्षण और शोध संस्थानों तथा अन्य संस्थाओं में विभिन्न प्रकार की विशिष्ट नौकरियों के लिए आवश्यक दक्षताओं से युक्त कर्मचारी प्रदान करती है। इतना ही नहीं, शिक्षा से यह अपेक्षा भी है कि वह लोगों के मूल्यों और अभिवृत्तियों में बदलाव लाए। सामाजिक परिवर्तन और आधुनिकीकरण में शिक्षा की महती भूमिका है। विकासशील देशो के नेताओं और योजना निर्माताओं ने अपने लोगों को शैक्षिक सुविधाएँ प्रदान करने के लिए बड़े पैमाने पर प्रावधान किए हैं। भारत में हमने देखा है कि पिछले 50 सालों की राष्ट्रीय पंचवर्षीय योजनाओं में हमारे शैक्षिक योजनाकारों ने सभी स्तरों पर तथा देश के सभी क्षेत्रों तक शैक्षिक सुविधाएँ पहुचाने का बहुत प्रयास किया है। भारत ने आधुनिक समाज की रचना के लिए विकसित देशों के साथ कर्मचारियों और विचारों के आदान-प्रदान को प्रोत्साहन दिया है। उनके सिद्धांतों, अनुभवों, कार्यविधि और यंत्रविधि को अपनाया है और अपने प्रयोग में लिया है। जिसके अच्छे परिणाम निकले हैं। फिर भी, कुछ परिवर्तन अभी भी लाने बाकी हैं।

यदि हम भारतीय नागरिकों की जीवन-पद्धति का विश्लेषण करें तो हमें दो रोचक परिवर्तन स्पष्ट दिखाई देंगे। पहला, निम्न और मध्य वर्ग के अधिकाधिक लोग (विशेष तौर पर निम्न वर्ग और निम्न मध्यवर्ग) अब अधिक त्याग कर रहे हैं, जिससे उनके बच्चे शिक्षित हो सकें और शिक्षा के द्वारा वे अपना जीवन-स्तर अधिक अच्छा बनाने के योग्य हो सकें। दूसरा, निम्न जातियों के अधिक-से-अधिक लोग शिक्षा प्राप्त करके अपने-आपको सामाजिक और आर्थिक रूप से ऊपर उठाने में सफल हुए हैं। निश्चित रूप से शिक्षा ने उन्हें जीवन में उत्तम परिवर्तन लाने के योग्य बनाया है तथा उनके सामाजिक स्तर को उत्तम बनाया है एवं बच्चों के लिए महत्वाकांक्षाओं के द्वार खोल दिए हैं।

जिस भावना, भविष्य दृष्टि और शक्ति के साथ ब्राह्मसमाज, आर्यसमाज और ईसाई समाज के प्रोटेस्टेन्टों ने समाज-सुधार संबंधी कार्य किए, उसी भावना, भाविष्यदृष्टि और शक्ति के साथ आज शिक्षा को भी सामाजिक सुधार के कामों में हाथ डालना चाहिए। अधिक उदारवादिता और पाश्चात्य खुलापन या आधुनिकता का प्रभाव ही काफी नहीं है। समकालीन भारतीय समाज में ऐसे ठोस कार्यक्रम बनाए जाने आवश्यक हैं जो स्वतत्रंता के पिछले 50 सालों में नहीं बन सके। शिक्षा के उचित प्रयोग कम-से-कम समय में संपन्न हो जाने चाहिए। प्रौढ़ या सामाजिक शिक्षा

के कार्यक्रमों को नया रूप दिए बिना ये संतोषजनक ढंग से पूरे नहीं हो सकते। इसके साथ ही शिक्षा को बहूद्देशीय उपकरण बनाए बिना वांछनीय सामाजिक परिवर्तन नहीं लाए जा सकते। हमारी पाठ्चर्या वास्तव में बदली जानी चाहिए और उसे आधुनिक बनाना चाहिए।

हमारे अध्यापकों को बहुप्रतीक्षित सामाजिक सुधार करने में राष्ट्र की सहायता करनी चाहिए। और वे ऐसा कर भी सकते हैं। किंतु सर्वप्रथम उन्हें अपने आदर्श व्यक्तित्व का उदाहरण प्रस्तुत करना होगा। उनमें उच्च स्तर की तादात्म्य अनुभूति, उपलब्धि, उत्प्रेरणा, सामाजिक संवेदनशीलता, जोखिम उठाने की क्षमता, ऐसे ही अन्य गुण होने चाहिए जो आधुनिक मानव के लिए आवश्यक हैं। यह तभी संभव है जब वे हमारे युवावर्ग के मस्तिष्क को क्रियाशील बनाएँ और उन्हें ऊर्जा प्रदान करें। भारतीय अध्यापकों में आधुनिकता सापेक्ष प्रगतिशील दृष्टि होनी चाहिए। तभी वे अपने विद्यार्थियों को भविष्य के समाज में उचित स्थान प्राप्त करने के लिए तैयार कर सकते हैं। अतः उन्हें मन से भारत में सामाजिक परिवर्तन की प्रक्रिया का भागीदार बनना चाहिए।

हम इस तथ्य से अवगत हैं कि अध्यापक यह सब कुछ अकेला नहीं कर सकता। सभी महत्वपूर्ण संबंधित व्यक्तियों यथा शिक्षा-आयोजकों, शैक्षिक प्रशासकों, सामाजिक और राजनैतिक नेताओं, तथा अभिभावकों आदि को अपने–अपने सामाजिक प्रभाव क्षेत्रों में आने वाले कार्यों को आधुनिक बनाकर अध्यापकों की सहायता के लिए आगे आना चाहिए।

सभी राजनैतिक दलों को आपस में मिल-बैठकर देश की शिक्षा की आवश्यकताँ पर चर्चा करने की जरूरत है। विभिन्न राजनैतिक गतिविधियों के अलावा देश में शिक्षा के लिए ठोस कार्यक्रम लागू करने के लिए सर्वसम्मति होनी चाहिए। शैक्षिक नौकरशाही अभी भी पुरानी रूढ़िबद्ध धारणाओं से ग्रस्त है। वह मंत्रालयों विश्वविद्यालय, निदेशालय, कॉलेजों और विद्यालयों पर छाई हुई है। इस स्थिति को बदलना जरूरी है। अभिभावकों को शिक्षा के क्षेत्र में महत्वपूर्ण पहल करनी होगी, और अपनी रुचि दिखानी होगी ताकि समाज को बदला जा सके। फिर भी, समकालीन भारत के अध्यापकों का अन्ततः मूलभूत उत्तरदायित्व इन सभी महत्वपूर्ण समूहों को अभिप्रेरित करना और शिक्षा के द्वारा अपने समाज को बदलने और आधुनिक बनाने वाले महान कार्य में कार्यात्मक सहयोग प्रदान करना होना चाहिए। यह एक महान दायित्व और चुनौती है। अध्यापक वर्ग जितनी प्रबलता और शीघ्रता से इसे महसूस करेंगे, राष्ट्र का उतना ही भला होगा।

7.7 शिक्षा के लिए सामाजिक माँग

यह विश्वास करने के सभी कारण उपलब्ध हैं कि उच्च शिक्षा की सामाजिक मांग लगातार बढ़ती जा रही है और बढ़ती ही रहेगी। हम जानते हैं कि आज के युवा वर्ग का झुकाव सत्रह से अठारह साल की उम्र तक पूर्णकालीन शिक्षा प्राप्त करने की ओर है ताकि वे उच्च शिक्षा के लिए योग्य उम्मीदवार बन सकें। हमने इस बात के भी कई प्रमाण दिए हैं कि हमारी जटिल और वर्ग-स्तरित शिक्षा-व्यवस्था के द्वारा हमारे समाज में वर्ग आधारित शैक्षिक व्यवस्था के संघर्ष में अच्छी योग्यता वाले सभी बालक और बालिकाओं को शैक्षिक अवसरों का लाभ नहीं मिल पा रहा है। दीर्घकालीन शिक्षा के मूल्यों की श्रेष्ठता का समाज के सभी स्तरों में प्रसार हुआ है। विशेष रूप से कामकाजी वर्ग के अभिभावकों में देखने में आया है कि वे अपने बच्चों को वैधानिक आयु प्राप्त होने से पहले और उस के बाद तक शिक्षा दिलाने के लिए इच्छुक और चिंतित हैं। हमारी व्यवस्था में शिक्षा की माँग को अपनाने और पूरा करने पर पड़ने वाले दबाव की तीन मुख्य दिशाएँ हैं। ये निम्नलिखित हैं:

(क) विश्वविद्यालय और उच्च शिक्षा

आधुनिक विश्वविद्यालय न केवल लगातार अपने परम्परागत कार्यों में जैसे विद्वानों का समुदाय और ज्ञान के केन्द्र बनने तथा शोध कार्य करने जैसे कामों में लगे हुए हैं, अपितु शक्तिपूर्ण नेतृत्व के स्रोत भी बन गए हैं। विश्वविद्यालय में बड़े पैमाने पर व्यावसायिक और प्रबंधन शिक्षा दी जाने लगी है जिसके फलस्वरूप अब विश्वविद्यालयों की समाजशास्त्रीय उपयोगिता अधिक बढ़ गई है। इससे अब उनका विशिष्ट व्यावसायिक हितो के साथ अधिक घनिष्ठ संबंध स्थापित हो चुका है और विश्वविद्यालय अपने प्रभाव की दिशा को बदल कर भौतिक उत्पादन के अधिक अनुकूल

बन गए हैं। वास्तव में, उच्च शिक्षा के नए संस्थानों के साथ अब ये हमारी राष्ट्रीय अर्थव्यवस्था के विकास में निर्णायक कारक बन गए हैं।

ऐसी संभावना है कि हमारे उच्च सस्थानों की वर्तमान में उपलब्ध क्षमता से अधिक संख्या में इच्छुक और योग्य विद्यार्थी शिक्षा-प्राप्ति के लिए आगे आएँगे। विश्वविद्यालयों के बारे में जो कुछ कहा गया है, वे सारी बातें समान रूप से विकसित प्रौद्योगिकी के महाविद्यालयों और शिक्षक-प्रशिक्षण महाविद्यालयों के बारे में भी सत्य हैं। इस प्रकार प्रत्येक व्यक्ति के लिए यह आवश्यक है कि वह अपनी क्षमता के अनुसार शिक्षा ग्रहण करे। इस प्रकार के वास्तविक रूप से शिक्षित समाज के विकास के लिए आवश्यक है कि जनता की आवश्यकता के अनुसार हमारी शैक्षिक संस्थाएँ कार्य करें।

(ख) और अधिक माध्यमिक शिक्षा

बच्चों के लिए लंबे समय तक के विद्यालय जीवन की आवश्यकता है ताकि वे अच्छी तरह से समाज के अनूकूल अपने को ढाल सकें। पूरे देश में विद्यालय-जीवन छोड़ने की आयु 16 वर्ष कर दी गई है। इसीलिए लंबी अवधि वाले पाठ्यक्रमों में वृद्धि की गई है।

देश को अधिक परिपक्व नागरिक प्रदान करने के लिए विद्यालयी शिक्षा की उम्र बढ़ाना आवश्यक है। इस उद्देश्य की पूर्ति के लिए विद्यालय को अपने क्रियाकलाप/प्रकार्य इस प्रकार से तैयार करने चाहिए कि वे किशोरों को सुरक्षित, नैतिक और यहाँ तक की आरोग्यकर वातावरण प्रदान कर सकें। अतः यह अति महत्व का विषय है कि विद्यालय ऐसा समुदाय बने जो नवयुवकों का विकास करने के अनुकूल, सहायक और उपयोगी हो।

(ग) तकनीकी शिक्षा

तकनीकी शिक्षा की मांग लगातार तेजी से बढ़ती जा रही है। यहाँ तकनीकि शिक्षा से हमारा अभिप्राय ऐसे छात्रों की तकनीकी शिक्षा से है जो शिक्षा पूरी कर उत्तम स्तर और मध्यम स्तर के तकनीशियन बनेंगे। इसका स्तर निश्चय ही प्रौद्योगिकीविदों के स्तर से कम होगा। पहले इस प्रकार के तकनीशियन अधिकतर अंशकालीन पाठ्यक्रमों के माध्यम से शिक्षित होते थे, जिनमें समय का अभाव होता था, अनुतीर्ण होने वालो का प्रतिशत अधिक होता था तथा उनमें विषय की गहनता का अभाव होता था। तकनीकी शिक्षा के क्षेत्र में विद्यालयों और आगे की शिक्षा- व्यवस्था के बीच घनिष्ठ संबंध की आवश्यकता प्रतीत होती है।

तकनीकी शिक्षा के क्षेत्र में अंशकालीन पाठ्यक्रमों की उपयोगिता पर सदा ही प्रश्नचिन्ह लगता आया है। अब विद्यार्थियो को कक्षा-कार्य, प्रायोगिक कार्य, और परिचर्चा के लिए अधिक समय देने का प्रावधान किया गया है। अन्ततोगत्वा सोलह से अठारह साल के बालकों के लिए सेतु पाठयक्रमों का विकास कर लेने पर शिक्षण की संतोषजनक पद्धति का सूत्रपात होगा। ये पाठ्यक्रम विद्यालयी शिक्षा के एकदम बाद और विद्यार्थियो के तकनीकी संस्थानों में प्रवेश से पहले का आधार तैयार करते हैं। सुधारों का सबसे महत्वपूर्ण पहलू विद्यालय और तकनीकी संस्थाओं में घनिष्ठ संबंध स्थापित करना है। यह सुधार उद्योगों की बदली हुई आवश्यकताओं के अनुरूप है। क्योंकि अब तक शिक्षा व्यवस्था उद्योगों की नित्य प्रति बदलती आवश्यकताओं की पूर्ति में असफल रहा था। अतः तकनीकी कॉलेज को उच्च डिग्री कोर्सों के लिए सीढ़ी की तरह माना जाना चाहिए। उच्च शिक्षा प्राप्ति हेतु अध्यवसायी विद्यार्थियों के लिए तकनीकी कोर्स से डिग्री कोर्स में विभिन्न ग्रेडों के विकल्प उपलब्ध हैं और समानान्तर प्रवेश-व्यवस्था का प्रावधान है। यह संभव है कि इस तरह उच्च कौशल कार्य में प्रयोगात्मक और सृजनात्मक विकल्प भविष्य का प्रमुख राजमार्ग बन सकेगा, जो व्यावसायिक संरचना को संतुष्टि, उच्च आदर और महत्वपूर्ण स्थिति प्रदान करेगा।

बोध प्रश्न

टिप्पणी : क) अपने उत्तरों के लिए नीचे दिए गए स्थान का प्रयोग कीजिए।

ख) इस इकाई के अंत में दिए गए उत्तरों से अपने उत्तर मिलाइए।

7. शिक्षा को सामाजिक परिवर्तन का एक साधन क्यों कहते हैं?

.....

.....

.....

.....

8. हमारे देश में शिक्षा की सामाजिक माँग की पूर्ति कैसे की जा सकती है?

.....

.....

.....

.....

.....

7.8 विद्यालय : एक सामाजिक इकाई के रूप में

अपने चारों ओर के व्यापक समाज के भीतर विद्यालय एक सामाजिक समूह की भाँति अपने आप में संगठित जीवन व्यतीत करता है। यह एक ऐसा समुदाय है जिसके बहुसंख्यक सदस्य बच्चे हैं और जो अभी तक पूर्ण रूप से समाज का सदस्य बनने के लिए तैयार नहीं हुए हैं। विद्यालय कुछ सीमा तक उन्हें सामाजिक जीवन जीने योग्य बनाने के उद्देश्य के लिए कार्य कर रहा है। समाजीकरण के उद्देश्य की पूर्ति के लिए विद्यालय का परिवेश का सहयोगी और पुष्टिकर होना आवश्यक है। जान डेवी (Dewey) ने ठीक ही कहा है: "सामाजिक जीवन के लिए तैयार करने का केवल एक तरीका है, और वह यह बालकों को कि सामाजिक जीवन के काम में लगा दिया जाए।" कोई भी व्यक्ति अचानक ही स्वतंत्र प्रौढ़ व्यक्ति नहीं बन जाता। अगर इसे मान भी लें कि बच्चे सामाजिक समुदाय के अंग हैं तो इसका यह अर्थ नहीं है कि उन्हें सारे समय सत्तावादी शासन के अधीन रखा जाए। बच्चों के साथ लगातार शक्ति का प्रयोग उन्हें औरों के प्रति दयालुता और आदर का व्यवहार करने के लिए प्रशिक्षण देने का उत्तम तरीका नहीं है।

7.8.1 विद्यालय-जीवन में लोकतंत्र

बच्चों को सामाजिक जीवन के लिए तैयार करने हेतु विद्यालय में वस्तुतः क्या किया जा सकता है? लोकतांत्रिक नियंत्रण का सार यह है कि प्रत्यायोजन और परामर्श की पद्धति द्वारा सत्ता और प्रभाव का बँटवारा करना चाहिए और यह बात विद्यार्थियो के सामने स्पष्ट कर दी जानी चाहिए। यह संभव है कि नियंत्रण के विभिन्न क्षेत्रों का कर्मचारियों और विद्यार्थियों के बीच विभिन्न स्तरों पर बंटवारा किया जा सकता है।

i) कर्मचारियों का नियंत्रण

सामान्य शिक्षा-नीति स्पष्ट रूप से कर्मचारी वर्ग और मुख्याध्यापक/मुख्याध्यापिका से संबंध रखती है क्योंकि ये लोग विद्यालय का संचालन करने वालों या स्थानीय शासन/प्राधिकारी के प्रतिनिधि होते हैं और इस रूप में उनका शब्द अंतिम और निर्णायक होता है। कुछ नियम ऐसे होंगे जिनके बारे में विद्यार्थियों से चर्चा करने की आवश्यकता नहीं है, अर्थात् ये नियम विद्यालय के अधिकारियों/कर्मचारियों द्वारा ही बनाए जाते हैं। पाठयचर्या और शिक्षण पद्धतियाँ अक्सर सिर्फ स्टाफ के नियंत्रण में होती हैं। परंतु यहाँ भी कुछ मामलों में विद्यार्थियों के साथ कुछ विषयों पर परामर्श किया जा सकता है।

ii) **विद्यार्थियों के साथ विचार-विमर्श**

पाठयचर्या पर विचार-विमर्श तभी किया जाना चाहिए जब पाठ्यक्रम संबंधी विषयों में बहुत विभिन्नता हो या कहें, विषयों के चयन में अनेक विकल्प विद्यमान हों। इस प्रसंग में विद्यार्थियों की इच्छाओं का ध्यान रखा जा सकता है। यह विद्यालय के आंतरिक कार्य में अधिक से अधिक संभव हो सकता है। जब व्यक्तिगत दत्त-कार्य पद्धति या प्रोजेक्ट पद्धति का विकास और प्रयोग हो। एक ऐसी व्यवस्था हो सकती है जिससे विद्यार्थियों की सलाहकार समिति से विद्यालय संगठन के नियमों के संबंध में मुख्य अध्यापक और कर्मचारियों की समिति के लिए सुझाव आमंत्रित किए जाएं। एक तरीका यह है कि प्रधानाध्यापक विद्यार्थियों के एक प्रतिनिधि वर्ग से पहले से ही उन परिवर्तनों के संबंध में परामर्श कर ले।

iii) **समान सहयोग वाली समितियाँ**

यह नाम उन सभी समितियों को दिया गया है जहाँ कर्मचारी और विद्यार्थी पूर्व निर्धारित संविधान के अंर्तगत समान रूप से उद्देश्य पूर्ति के लिए मिलते हैं। उदाहरण के लिए, हाउस मीटिंग, फोरम मीटिंग आदि के प्रसंग में; खासतौर पर उस समय जब छात्रसंघ का चुनाव हो या उनके अपने आंतरिक मामले हों। इन प्रसंगों में कर्मचारियों और विद्यार्थियों दोनों के प्रतिनिधि मिलते हैं। कुछ विशेष समितियाँ भी हो सकती हैं जैसेः विद्यालय पत्रिका समिति, पुस्तकालय संगठन समिति, और मनोरंजन समिति आदि। इस समितियों में कर्मचारियों और विद्यार्थियों को समान शर्तों पर सहयोग करना चाहिए। इस प्रकार की समितियों का सार या निर्णय निर्धारित निश्चित सीमाओं के भीतर किया जा सकता है। यह केवल प्रधानाध्यापक के विशेष अधिकार (वीटो) के द्वारा ही बदला जा सकता है पर जिसके प्रयोग की संभावना शायद ही कभी पैदा हो।

iv) **छात्र-नियंत्रण**

इसका अर्थ पूर्ण नियंत्रण नही हैं अपितु यह है कि छात्रों के निर्णय प्रभावकारी हों और अधिकतर मामलों में उन्हें चुनौती न दी जा सके। छात्र मुखिया व्यवस्था (Prefects system) का होना छात्र-नियंत्रण का एक उदाहरण है जो कि वस्तुतः प्रदत्त अधिकार का एक प्रकार है। छात्र मुखिया (Prefects) के पास दंड देने के कुछ अधिकार होने चाहिए तथा नियंत्रण का निर्धारित क्षेत्र होना चाहिए जिसके अंतर्गत वह स्वयं निर्णय ले सके। विद्यालय के खेलों का आयोजन, हॉबी क्लब की व्यवस्था और विद्यालय-बाह्य विभिन्न समितियों और क्लबों का नियंत्रण पूर्णरूप से छात्रों पर छोड़ देना चाहिए। स्टाफ के सदस्य इन क्रियाओं के साथ घनिष्ठ रूप से जुड़ तो सकते हैं, परंतु उन्हें नियंत्रण का अधिकार नहीं दिया जाना चाहिए। विद्यालय के कार्यों के संदर्भ में कुछ परियोजनाएँ और मन-मर्जी के अनुसार काम करने के घंटे (मुक्त–वरण घंटे/पीरियड) होते हैं जिनमें छात्रों की पहल ही प्रधान होती है; स्टाफ का हस्तक्षेप कम से कम होता है।

v) **साझा उत्तरदायित्व**

कम उम्र वाले विद्यार्थी हों, चाहे अधिक उम्र वाले विद्यार्थी – सभी को उत्तरदायित्व की भावना को उपयुक्त तरीके से सीखना चाहिए। विद्यार्थियों को सभी स्तरों पर काम के साथ-साथ खेल में भी इच्छानुसार पूरी भागीदारी के साथ हिस्सा लेने देना चाहिए तथा संगठन में भी वे जो करना चाहते हैं, उन्हें करने देना चाहिए। पुराने जमाने के विद्यालयों में कठोर नियंत्रण ही शिक्षण-पद्धति का सर्वस्वीकृत ढंग था। सच तो यह है कि समूह में निर्धारित भूमिका निभाते हुए ही उत्तरदायित्व की भावना विकसित होती है। जो भूमिका छात्र निभा रहा है उसी से छात्रों के समूह में उसके महत्व की भावना का विकास होता है। अगर वह महत्व महसूस नहीं करेगा तो उसमें उत्तरदायित्व की भावना नहीं जाएगी। इसे केवल अभ्यास से ही सीखा जा सकता है। यदि विद्यार्थी दिए गए कार्य की शुरूआत अपनी शक्तियों की सीमा में अच्छी प्रकार से करता है तो वह प्रगति करेगा और धीरे-धीरे अधिक कठिन उत्तरदायित्व को निभा सकेगा।

बहुत से विद्यालय कर्त्तव्य–पालन की ऐसी योजना बनाते हैं जिसमें छोटे से लेकर बड़े विद्यार्थी तक यानी अधिक-से-अधिक विद्यार्थियों को किसी-न-किसी ऐसे कर्त्तव्य का पालन करना पड़ता है, जो समस्त विद्यार्थी समुदाय से संबंधित हो, न कि केवल अपनी कक्षा के किसी छोटे या बड़े समुदाय से संबंधित हो।

वह तथा कथित 'क्रिया' पद्धति, जिसमें समूहों के कार्यों में परस्पर सहयोग निहित है, विद्यालय के सामाजिक जीवन पर महत्वपूर्ण प्रभाव डालती है। साथ मिलकर कार्य करने का शिक्षण विद्यार्थियों की संवृद्धि में महत्वपूर्ण कारक बन गया है। ऐसे बहुत से कार्य हैं जिनमें समूह से जुड़ने की भावना तथा औरों के साथ मिलकर समान उद्देश्य के लिए कार्य करने की भावना निहित होती है। ऐसे कार्यों से ही विद्याथियों की प्ररेणा और ऊर्जा में वृद्धि होती है।

7.8.2 विद्यालय का सामाजिक वातावरण

सामाजिक समूह में लोगों का परस्पर संबंध एक ऐसे वातावरण की सृष्टि करता है जिसे 'सामाजिक वातावरण' कह सकते हैं। हर समूह में आपसी सहयोग या मेलजोल की भावना होनी चाहिए, जिसके लिए 'मनोबल' या 'हौसला' शब्द का प्रयोग किया जा सकता है। विद्यालय समुदाय के सामाजिक वातावरण के पीछे क्या स्थिति है, इसके अध्ययन करने की आवश्यकता है तथा उन अन्य कारकों को भी खोजने का प्रयास करना होगा जिनसे विद्यालय में अच्छा मनोबल बने तथा उन कारकों को भी खोजा जाए जो अच्छा मनोबल प्राप्त करने में बाधक हैं।

विद्यालय में साझा जीवन जीने से छोटे-छोटे समुदायों के लोगों के बीच विशेष प्रकार के मानवीय संबंध बन जाते हैं। विद्यालय के कार्यो का महत्वपूर्ण भाग सामाजिक जीवन के लिए उन्हें तैयार करना है। इन मानवीय संबंधों का स्वरूप ही सर्वाधिक महत्व का है। विद्यालय के वातावरण को प्रभावित करने वाले निम्नलिखित कारक हैं:

i) प्राधिकार का उपयोग

अब तक हम यह मानते रहे हैं कि हमारे विद्यालयों में लोकतांत्रिक सामाजिक संबंध अत्यधिक वांछनीय हैं। फिर भी यहाँ संकेत करना जरूरी है कि यह एक पूर्वधारणा ही है क्योंकि अधिकतर समय में निर्णय विद्यालयों के अधिकारियों द्वारा ही लिए जाते हैं। किंतु जो अधिकारी लोकतांत्रिक भावना में विश्वास रखता है वह सामूहिक चर्चा के द्वारा कार्य करने, निर्णय लेने तथा जहाँ संभव हो वहाँ समय-सारणी निर्धारित करने की पद्धत्ति अपनाता है। ऐसा अधिकारी प्रोत्साहन व व्यावहारिक परामर्श देता है। समूह प्रारंभ से ही कार्य के आगे के सभी स्तरों को अपने ध्यान में रखता है। भारतीय विद्यालयों में इस प्रकार के वातावरण का विकास किया जाना आवश्यक है।

ii) द्वन्द्वावस्था में प्रभुत्व प्रदर्शन

जब अध्यापक बालक/छात्र की इच्छा के विरूद्ध कार्य करता है तो द्वन्द्व उत्पन्न होता है। छात्र जब अपने विचार को यह कहकर प्रकट करता है कि उसके विचार अध्यापक के विचार से मेल नहीं खाते तब वह सामान्यतः उसका विरोध या प्रतिरोध करता है। प्रत्यक्ष अस्वीकृति असहमति, आक्षेप, चेतावनी, धमकी और दंड आदि सभी बातें द्वंद्व की स्थिति पैदा करते हैं, विशेष रूप से तब जब अध्यापक बच्चे को स्वीकार्य तर्क या स्पष्टीकरण के बिना ही छात्र को दंडित करता है।

iii) मिलजुल कर कार्य करने का परिणाम : एकीकरण

यहाँ सहयोग का आधार बच्चे द्वारा प्रकटित पहल पर निर्भर करता है। उसे अपने सुझावों और इच्छाओं को स्वतंत्र रूप से व्यक्त करने का अवसर देना चाहिए। बच्चों को उद्यम में सहयोगी की तरह समझना चाहिए। छात्र को ऐसा प्रतीत हो कि उसकी जरूरत को महसूस किया जा रहा है। भले ही छात्र 'गलत' हो – उसके विचारों को सुनना चाहिए और उनकी जाँच की जानी चाहिए। अध्यापक को बच्चे की उन्नति और उसकी अपनी समस्याओं को सुलझाने में सहायता करनी चाहिए और उसके सहज और आत्मप्रेरित व्यवहार को मान्यता एवं सहमति देनी चाहिए।

7.8.3 अध्यापक की भूमिका

समाज के अन्य किसी सदस्य की भाँति अध्यापक ने सामाजिक और निजी जीवन में जो स्थिति ग्रहण की है उसके अनुसार वह बहुत सारी सामाजिक भूमिकाएँ निभाता है। परंतु अध्यापन-व्यवसाय की प्रकृति उसे विशेष स्थिति में रखती है। वह अपने व्यवसाय के संदर्भ में काफी जटिल

भूमिका निभाता है। वह युवकों के संसार और प्रौढ़ों के मध्य में स्थित है। वह अपने विद्यार्थियों की अपेक्षाओं को उन्हें कौशल का ज्ञान देकर पूरा करता है और उनके अभिभावकों को उन अपेक्षाओं की याद दिलाकर दोनों को समाज की जरूरत से जोड़ता है। अध्यापक की मुख्य भूमिका का संक्षेप में नीचे वर्णन किया गया है:

i) **अध्यापक : शैक्षिक विशेषज्ञ के रूप में**

यह अध्यापक की परंपरागत भूमिका है। उससे आशा की जाती है कि वह अपने विषय को भली-भाँति जाने। उसे अपने ज्ञान-क्षेत्र का विद्वान और विशेषज्ञ भी होना चाहिए। इतना ही नहीं, उसे इस सत्य का सामना करने के लिए भी तैयार रहना चाहिए कि हो सकता है, उसके कुछ विद्यार्थी उससे अधिक होशियार हों। अध्यापक जब गलती करे तो उसे सहज रूप में से उसे स्वीकार कर लेना चाहिए।

ii) **अध्यापक : प्रविधि विशेषज्ञ के रूप में**

अध्यापक से आशा की जाती है कि वह शिक्षण और अधिगम की प्रविधियों का विशेषज्ञ हो। वह विभिन्न प्रकार से यह भूमिका निभा सकता है। अध्यापक को कक्षा में देखकर पर्यवेक्षक यह जान लेता है कि वह प्रत्यक्ष और परोक्ष अधिगम को कितना प्रोत्साहित कर रहा है; तथा पाठ कितना अध्यापक-केन्द्रित है और कितना विद्यार्थी-केंद्रितः उसका अध्यापन कितना भाषण-आधारित है और कितना चर्चा पर आधारित। अधिगम-प्रक्रिया की प्रकृति और स्तरों के अनुसार सफल अधिगम के लिए विभिन्न सामाजिक परिस्थितियाँ होती हैं। कक्षा में अधिगम सामूहिक परिस्थितियों में होता है। अध्यापक का सामान्य कार्य कक्षा में अधिगम के लिए अपेक्षित व्यवहार का निर्माण तथा समूह के मुख्य उद्देश्य की पूर्ति करना है।

iii) **अध्यापक के रूप में चरित्र प्रशिक्षक**

उच्च मूल्यों की गुणवत्ता वाला अध्यापक अच्छा अनुशासन बनाए रखने के योग्य होता है। इस उद्देश्य को प्राप्त करने के विभिन्न तरीके हैं, जिनमें सख्ती से दंड देने से लेकर व्यक्तिगत प्रभाव के द्वारा शिष्ट और प्रभावकारी ढंग से अपनी बात मनवाने की विधि सम्मिलित है। निस्संदेह, अनुशासन बनाए रखना व्यवस्था बनाए रखने की अपेक्षा कहीं अधिक प्रभावी है और उसका उद्देश्य विद्यार्थियों में स्वशासन विकसित करने का सार्मथ्य प्रदान करना है। इस प्रसंग में अध्यापक की भूमिका परामर्शदाता या उपबोधक जैसी होती है। यदि विद्यार्थी की रूचि नही है या वह सीखने (अधिगम) के लिए प्रयत्न करने का इच्छुक नहीं है तो ऐसी स्थिति में अध्यापक का पहला कर्तव्य उसका कारण जानना और छात्र के अधिगम में आने वाली बाधाओं को दूर करना है।

iv) **अध्यापकः विद्यालय के कर्मचारी वर्ग के एक सदस्य के रूप में**

विद्यालय और सामान्य शिक्षा-व्यवस्था - दोनों में अध्यापक शिक्षा-व्यवस्था के प्रचलित पदसोपान क्रम संबंधी बिरादरी का एक सदस्य है। प्रत्येक विद्यालय में सत्ता-व्यवस्था की एक सर्वमान्य औपचारिक वरिष्ठता–संरचना होती है। मुख्याध्यापक से लेकर निचले स्तर पर वरिष्ठता के विभिन्न स्तर होते हैं। अध्यापक को अपने वरिष्ठता–क्रम के अनुसार उचित कार्य करना चाहिए। विभिन्न वरिष्ठ अध्यापकों के बीच पारस्परिक सामाजिक संबंध विभिन्न विद्यालयों में भिन्न-भिन्न होते हैं।

v) **अध्यापक : समाज के एक सदस्य के रूप में**

अध्यापक समाज के किसी-न-किसी विशेष उपसंस्कृति का सदस्य होगा ही। उसने व्यवहार के कुछ मानदंडों को अपने पालन-पोषण के दौरान अवश्य ग्रहण करना होगा। उसके कक्षा में व्यवहार और अध्यापक-कक्ष में परस्पर संबंधों पर इन व्यवहार-मानदंडों का प्रभाव अवश्य पड़ता है।

शिक्षक प्रौढ़ समाज के प्रतिनिधि की भूमिका भी निभाता है। यह उसकी सत्ता का अंतिम स्रोत है। वह युवाओं के समाजीकरण के लिए उत्तरदायी है क्योंकि वे छात्र ही तो आगे चलकर प्रौढ़

समाज के अंग बनेंगे। अध्यापक छात्रों का इसी प्रौढ़ समाज के लिए तैयार करता है। अतः अध्यापक के चाहिए कि वह अपने व्यवहार से छात्रों के लिए एक आदर्श की स्थापना करे।

बोध प्रश्न

टिप्पणी : क) अपने उत्तरों के लिए नीचे दिए गए स्थान का प्रयोग कीजिए।

ख) इस इकाई के अंत में दिए गए उत्तरों से अपने उत्तर मिलाइए।

9 विद्यालय के सामाजिक वातावरण से आप क्या समझते हैं?

.....

.....

.....

.....

.....

.....

7.9 सारांश

इस इकाई में समाज की उपव्यवस्था के रूप में शिक्षा की विशेषताएँ बताई गई हैं और भारतीय समाज के विभिन्न पहलुओं से उनका संबंध बताया गया है। सामाजिक परिवर्तन लाने में शिक्षा की भूमिका एक उपकरण जैसी है। इसके लिए पहले विभिन्न स्तरों पर शिक्षा की तर्कसंगत सामाजिक माँग पर विस्तार से चर्चा की गई है। इसके बाद, इस इकाई में विद्यालय को एक ऐसी सामाजिक इकाई का केन्द्र मानकर वर्णन किया गया है जिसमें विद्यालय की भूमिका विद्यार्थियों को सामाजिक जीवन में लोकतांत्रिक कार्यप्रणाली और गतिशील अन्योन्यक्रिया सिखाना है। साथ ही, यहाँ चर्चा परिचर्या का महत्व, परामर्श सहयोग और सामाजिक जीवन में मिलकर कार्य करने का ब्यौरा प्रस्तुत किया गया है। अंत में, इस इकाई में शिक्षक की बहुआयामी भूमिकाओं का वर्णन–विश्लेषण किया गया है। यथा शैक्षिक ज्ञान संपन्नता, शिक्षण-पद्धति, विशेषज्ञ वैज्ञानिक, चरित्र का प्रशिक्षक, विद्यालय कर्मचारी वर्ग का सदस्य और समाज का सदस्य आदि। इस इकाई में विद्यालय के आदर्श सामाजिक वातावरण और इसके अंर्तगत विभिन्न सदस्यों के स्थान का वर्णन किया गया है। इस प्रकार, यह इकाई शिक्षक को इस बारे में उचित दिशा प्रदान करती है कि किस प्रकार शिक्षा और विद्यालय विद्यार्थियों के मन में सामाजिक मूल्यों के सृजन हेतु तथा भविष्य में समाज के सदस्यों के रूप में अपनी अभिवृत्तियों को विकसित करने के लिए सहायता प्रदान करते हैं।

7.10 अभ्यास कार्य

1. अपने शैक्षिक अनुभवों के आधार पर उदाहरण देकर बताइए कि समुदाय में सकारात्मक सामाजिक परिवर्तन लाने में विद्यालय अनुकूल परिस्थितियों का कैसे निर्माण कर सकता है।

2. अपने विद्यालय में ऐसे उदाहरण ढूंढ़िए जो विभिन्न स्तरों पर समाज में शिक्षा के लिए बढ़ती हुई सामाजिक मांग को प्रकट करते हों।

3. क्या आप सोचते हैं कि विद्यार्थियों को विद्यालय की कार्यप्रणाली से संबंधित मामलों की कुछ जिम्मेदारियां सौंपी जानी चाहिए? हाँ तो क्यों और नहीं तो क्यों नहीं?

4. भारतीय समाज में शिक्षा और संस्कृति के संबंध तलाशिए।

5. अध्यापक होने के नाते आप कितने आत्मविश्वास से यह अनुभव करते हैं कि आप अध्यापक के दायित्व को निभाने के लिए पूरी तरह से तैयार हो गए हैं?

6. क्या आप यह महसूस करते हैं कि विद्यालय की परिस्थितियों को ध्यान में रखते हुए वास्तविक जीवन में अध्यापक को कुछ सीमा तक सत्तावादी प्रकृति का और सख्त होना चाहिए? यदि हाँ, तो क्यों और यदि नहीं तो क्यों नहीं ?

7.11 बोध प्रश्नों के उत्तर

1. सामाजिक व्यवस्था सामाजिक अन्योन्यक्रियाओं का एक तंत्र है जिसका संगठन समाज को एकाधिक आवश्यक कार्यों को करने के लिए हुआ है।

2. इसलिए कि इससे व्यक्ति में सामाजिक मानदंडों के साथ-साथ मूल्यों, ज्ञान और समझदारी का विकास होता है जिनके आधार पर वह समाज के लिए प्रभावी और उत्तरदायी बनता है।

3. शिक्षा निम्न प्रयोजनों की पूर्ति के लिए आवश्यक है :

   i) व्यक्ति में मानदंडों, मूल्यों, ज्ञान और समझदारी का विकास करना।

   ii) समाज को परिस्थितियों के अनुकूल ढालना।

   iii) समाज में अन्योन्य-क्रिया व्यवस्था का अध्ययन करना।

   iv) व्यक्ति की आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए अवसर प्रदान करना।

   v) शिक्षा जैसी विद्याशाखा को ज्ञान की उन्नति द्वारा समृद्ध बनाना।

4. जाति को इस प्रकार परिभाषित किया गया है "एक सामाजिक वर्ग, जिसमें व्यक्ति की सदस्यता जन्म से निर्धारित है।"

5. सामाजिक पिछड़ेपन में व्याप्त अंधविश्वास और सामाजिक बुराइयाँ शैक्षिक अवसरों को जाति, पंथ, लिंग आदि के आधार पर भेदभाव की ओर ले जाते हैं।

6. शिक्षा सांस्कृतिक निरंतरता को बनाए रखती है और आवश्यकतानुसार सांस्कृतिक परिवर्तन के लिए कार्य करती है।

7. शिक्षा व्यवसाय और कौशलों में आवश्यक प्रशिक्षण प्रदान करती है। इसके लिए यह अनेक साधनों, उपकरणों और संस्थाओं का प्रयोग करती है तथा लोगों के मूल्यों तथा मनोवृत्तियों को भी बदलती है।

8. शिक्षा की सामाजिक मांग की पूर्ति विश्वविद्यालय स्तरीय शिक्षा, अन्य प्रकार की उच्च शिक्षा, विद्यालय-शिक्षा के साथ-साथ तकनीकी शिक्षा में मात्रात्मक और गुणात्मक सुधार करके की जा सकती है।

9. विद्यालय के सामाजिक वातावरण से अभिप्राय है: विभिन्न सदस्यों, जैसे अध्यापकों, विद्यार्थियों और प्रशासनिक कर्मचारियों के बीच पारस्परिक संबंधों का विकास विद्यालय में किस तरह से हुआ है।

7.6 कुछ उपयोगी पुस्तकें

Bhattacharya and Sriniwas (1977); *Society and Education*, Academic Pub., Calcutta.

Charlos, P. Lomis (1960) ; *Social System: Essays on their Persistences Chances VI*, Van Nostrand Co.

Chitnis, Suma (1974); *Sociology of Education in a Survey of Research in Sociology and Social Anthropology*, Vol. II, ICSSR, New Delhi.

Durkhiem, Emile (1956); *Education and Sociology*, Free Press, New York.

Gore, M.S. & Others (1967) ; *Papers in the sociology of Education in India*, NCERT, New Delhi.

John, Dewey (1937); *Education and Social Change: Social Frontiers.*

Ottawa Y. A.K.C. (1962); *Education and Society*; Routeledge & Kegan.

Parsons, Talcott (1952); *Social System*, Free Press, U.S.A.

Robert J. ,Stal Cub (1968); *Sociology and Education*, Charles E. Merril Publications Co. Columbus, Ohio.

Shah, B.V. (1964); *Social Change and College Students of Gujarat*; M.S. University, Baroda.

Tayler, William, (1977); *The Sociology of Educational Inequality*; Methuen & Co. Ltd.